7

वेदाङ्ग साहित्य

अङ्ग शब्द की व्युत्पत्ति अत्यन्त 'उपकारक' है। 'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि' अर्थात् जिससे किसी भी वस्तु के स्वरूप ज्ञान में सहायता प्राप्त होती है, उसको अङ्ग कहते हैं। वेद स्वयं ही एक अत्यधिक कठिन विषय है उसके अर्थ ज्ञान में उसके कर्मकाण्ड के प्रतिपादन में जो उपयोगी शास्त्र है वे ही वेदाङ्ग होते है। वेदाङ्गों का ज्ञान सम्पूर्ण वेद ज्ञान के लिए अत्यंत आवश्यक ही है। और उनका विवरण इस अध्याय में करते है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- शिक्षा ग्रन्थों के विषय में विस्तार से जान पाने में;
- निघण्टु ग्रन्थों के विषय में अधिकता से जान पाने में;
- अन्य वेद के अङ्गों के विषय में जान पाने में; और
- यास्क के निरुक्त विषयक ज्ञान को ग्रहण कर पाने में।

7.1 भूमिका

'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि' इति व्युत्पत्ति से अङ्ग शब्द का अर्थ होता है 'उपकारक' इति। अर्थात् जिस किसी भी वस्तु से स्वरूप ज्ञान में सहायता होती है, उस अङ्ग को इस प्रकार से कहते हैं। वेद स्वयम् ही एक कठिन विषय है। वेद अर्थ के ज्ञान के लिए उसके कर्मकाण्ड के प्रतिपादन के लिए जो उपयोगी शास्त्र हैं वे ही वेदाङ्ग होते हैं। वेद का यथार्थ ज्ञान लाभ के लिए छः विषयों का ज्ञान अपेक्षित होता है। वेद मन्त्रों का उचित प्रकार से उच्चारण

टिप्पणियाँ

ही सबसे पहली आवश्यक वस्तु है। यह शब्द मन्त्रों का यथार्थ उच्चारण के लिए प्रवर्तमान वेदाङ्ग को शिक्षा इस नाम से जाना जाता है। वेद का मुख्य प्रयोजन ही वैदिक कर्मकाण्ड का और याग का यथार्थ अनुष्ठान है। इस अर्थ में प्रवृत्त अङ्ग को कल्प इस प्रकार कहते हैं। कल्प की व्युत्पत्ति प्राप्त अर्थ होता है – **'कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र'** इति। व्याकरण ही वेदों का रक्षक है, वेदार्थ के जानने में सहायक है, और भी प्रकृति प्रत्यय उपदेश के पद स्वरूप का प्रतिपादक है, उससे अर्थ निर्णायक साधनों में सबसे श्रेष्ठ साधन होने से उसका प्रयोग होता है, इस कारण से ही व्याकरण नाम वेदाङ्ग नितान्त ही प्रसिद्ध है, और वेदाङ्गों में श्रेष्ठ स्थान को सुशोभित करता है। वैदिक पदों की व्युत्पति ही निरुक्त का विषय है। ''निरुच्यते निश्शेषेण उपदिश्यते तत् तदर्थावबोधनाय पदजातं यत्र तन्निरुक्तम्'' इस प्रकार कहते हैं। वेद छन्दों बद्ध होते हैं। इस कारण उनके उच्चारण के लिए छन्द का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। वरुण के विषय में शुनःशेप ऋषि का यह प्रसिद्ध मन्त्र है –

'निषाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः॥'

यज्ञ भाग अनेक प्रकार का है। कुछ यज्ञ संवत्सर सम्बन्धित होते हैं और कुछ ऋतु सम्बन्धित होते हैं। और कुछ तिथि, मास, पक्ष, नक्षत्र परक होते हैं। उससे ज्योतिष-नाम के वेदाङ्ग का भी अपना वैशिष्ट्य है।

संक्षेप से वैदिक मन्त्रों का यथार्थ उच्चारण के लिए शिक्षा का, कर्मकाण्ड का, और यज्ञीय अनुष्ठान के निमित्त के लिए कल्प का, शब्दों के रूप ज्ञान के लिए, व्याकरण का अर्थ ज्ञान के लिए और निर्वचन के लिए निरुक्त का, वैदिक छन्दों का ज्ञान लाभ के लिए छन्द का तथा अनुष्ठान के उचित काल निर्णय के लिए ज्योतिष शास्त्र का प्रयोजन है।

आधुनिक इतिहासकारों का कथन है की इन छः वेदाङ्गों का निर्माण भी वैदिक युग के उत्तरार्द्ध भाग में ही हुआ था। शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष ये छः वेदाङ्गों के नाम है। पाणिनीय शिक्षा में कहा है –

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु॥
छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ **(पा. शि. ४१/४२)**

पतञ्जलि ने भी कहा है – 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' इति।

इन छः वेदाङ्गों का उल्लेख गोपथ ब्राह्मण, बौधायन धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र, रामायण के समान प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। बुद्ध के अवतार से प्राचीन काल को उत्तर वैदिक काल होने का निर्धारण पण्डित लोग करते हैं। वेदों के भाषा और भाव

दोनों ही कठिन है। उससे वेद अर्थ को जानने के लिए वेदाङ्गों की अपेक्षा होती है। वेदार्थ बोध के लिए सहायक होने से उनका उपकार स्पष्ट ही है।

पाठगत प्रश्न 7.1

1. अङ्ग शब्द की व्युत्पत्ति प्राप्त अर्थ क्या है?
2. अङ्ग शब्द का विग्रह लिखो?
3. कल्प की व्युत्पत्ति प्राप्त अर्थ क्या है?
4. छ अङ्ग कौन-कौन से हैं?
5. पतञ्जलि ने वेदाङ्ग के विषय में क्या कहा है?

7.2 शिक्षा

जिससे वेद मन्त्रों के उच्चारण शुद्ध होते हो उस शास्त्र को शिक्षा कहते हैं। वेद में स्वर की प्रधानता सभी को विदित ही है, और स्वर ज्ञान शिक्षा से ही होता है। इसलिए ही यह शिक्षा शास्त्र को वेदाङ्ग कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् के आरम्भ में शिक्षा शास्त्र का प्रयोजन कहा है की - अब शिक्षा की व्याख्या करेंगे - वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान ये शिक्षा अध्याय हैं। वहाँ अकार आदि हि वर्ण, उदात्त आदि हि स्वर, ह्रस्व आदि हि मात्रा, स्थान और प्रयत्न बल, निषाद आदि साम, और विकर्षण आदि सन्तान हैं। इसको जानने के लिए ही शिक्षा का प्रयोजन है।

जैसे वैदिक विधानों को पूर्ण करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थ का उपयोग करते हैं वैसे ही उच्चारण प्रयोजन के लिए शिक्षा का भी उपयोग होता है। अथवा वेदों का वैदिक साहित्य के अध्ययन-अध्यापन विषय -विधियों का निर्देश शिक्षा शास्त्र में किया है। स्वर वर्ण आदि के उच्चारण किस प्रकार से करने चाहिए इस विषय में उपदेश शिक्षा शास्त्र देते हैं। सायण के ऋग्वेद भाष्य भूमिका में कहा है - **'स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षेति।'**

वेदपाठ के समय में शुद्ध उच्चारण और स्वर विधि होनी चाहिए। अशुद्ध उच्चारण युक्त और गलत स्वर वेदपाठ अत्यधिक हानिकारक होती है। उससे महाविनाश भी होता है। इच्छित फल के लिए यज्ञ याग उपासना आदि जो कार्य करते हैं, अशुद्ध उच्चारण से उस कार्य से विशिष्ट लाभ कभी भी नहीं होता है। उस प्रकार का अशुद्ध उच्चारण युक्त कार्य तो बड़ी विपत्ति को ही उत्पन्न करता है। सुना जाता है की प्राचीन काल में 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' इस मन्त्र का अशुद्ध उच्चारण किया, उससे यजमान के लिए तो महाविनाश ही हुआ। पाणिनीय शिक्षा में कहा है -

''मन्त्रों हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥''

वेद उच्चारण का यथार्थत्व जैसा होना चाहिए, उससे सही स्वर ज्ञान की अपेक्षा होती है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित भेद से स्वर तीन प्रकार के हैं। 'उच्चैरुदात्तः', 'नीचैरनुदात्तः', 'समाहारः स्वरितः', इन सूत्रों में पाणिनि ने उन तीनों स्वरों के लक्षण कहे हैं। 'अनुदात्तपदमेकवर्ज्यम्' इस पाणिनीय सूत्र में कहा है की वेद के प्रत्येक पद में अवश्य ही कुछ उदात्त स्वर होते हैं, और शेष स्वर अनुदात्त होता है। उन अनुदात स्वरों में ही परिस्थिति विशेष होने से स्वरित दूसरा स्वर बनता है। स्वर प्रधानता का कारण वेदों में है, उन स्वरों का अर्थ नियन्त्रण है। किस प्रकार से स्वरों से अर्थ नियन्त्रणकारी होता है यह ऊपर के उदाहरण में कहा ही है। वेदों में शुद्ध उच्चारण सबसे पहले आवश्यक होता है। और उसका शुद्ध उच्चारण शिक्षा शास्त्र में उपदेश दिया है। इस कारण से ही छः वेदाङ्गों में शिक्षा नाम अङ्ग की प्रधानता बताई है। शिक्षा के अभिमत विषय प्रातिशाख्यों में देखते हैं और प्रातिशाख्य ग्रन्थ शिक्षा शास्त्र की प्राचीनता के प्रतिनिधि ही हैं। संहिता पाठ से सम्बन्धित सभी विषयों का वहाँ अङ्ग उपाङ्गों सहित प्रतिपादन किया है।

शिक्षा शास्त्र का इतिहास बहुत प्राचीन है। परन्तु उस विषयक प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते हैं। श्री वाचस्पति गैरोला अपने इतिहास में लिखते है की – सत्यकेतुविद्यालङ्कार का यह मत है की जैगीषव्य का शिष्य बाभ्रव्य शिक्षा शास्त्र का जनक हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में आचार्य गालव द्वारा शिक्षा ग्रन्थ का उल्लेख प्राप्त होता है। पूना में भण्डारकर शोध संस्थान से भारद्वाज शिक्षा का प्रकाशन हुआ है। और वहाँ नागेश्वर भट्ट की टीका है। नागेश्वर मत के द्वारा वह ग्रन्थ भारद्वाज ने लिखा है। शिक्षासङ्ग्रह नामक ग्रन्थ में बत्तीस –शिक्षा पुस्तकों का सङ्ग्रह प्राप्त होता है। चारों वेदों की भिन्न भिन्न शाखाओं में शिक्षा का सम्बन्ध है। श्रीबलदेव–उपाध्याय ने अपने 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' – इस नाम के ग्रन्थ में याज्ञवल्क्य शिक्षा, वासिष्ठी शिक्षा आदि बीस ग्रन्थों का उल्लेख दिया है। आजकल प्राप्त पाणिनीय शिक्षा प्राचीन शिक्षासूत्रों की सहायता से रचना की गई है ऐसा बुद्धिमानों का विचार है। आज के युग में स्वामि दयानन्द ने पाणिनीय शिक्षा का उद्धार किया है। और यह भी यहाँ स्मरण रखना चाहिए की यह शुक्ल यजुर्वेद में याज्ञवल्क्य शिक्षा, सामवेद में नारदीय शिक्षा, अथर्ववेद में माण्डूकी शिक्षा, और ऋग्वेद में पाणिनीय शिक्षा प्राप्त होती है। इनसे भिन्न अन्य कोई दूसरी शिक्षा प्राप्त नहीं होती है।

पाठगत प्रश्न 7.2

1. तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा विषय में क्या कहा है?
2. सायण ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में क्या कहा है?
3. जैगीषव्य का शिष्य कौन है?
4. उदात्त–अनुदात्त–स्वरित–बोध कराने वाला पाणिनीय के दो सूत्रों को लिखिए।
5. महाभारत के शान्ति पर्व में कौन से शिक्षा ग्रन्थ का उल्लेख है?
6. कुछ शिक्षा ग्रन्थों के नाम लिखिए।

7.2.1 शिक्षा साहित्य

यहाँ 'शिक्षा'-शब्द का अर्थ होता है वैदिक मन्त्रों के उच्चारण विधि को सिखाने वाले ग्रन्थ है। शिक्षा प्रातिशाख्य का परस्पर सम्बन्ध विषय में एक मत नहीं है। शिक्षा का साहित्य पर्याप्त रूप से विशाल है। प्रधान शिक्षा का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया है -

7.2.2 व्यासशिक्षा

इस ग्रन्थ के ऊपर महामहोपाध्याय-पण्डित वैङ्कटराम शर्मा द्वारा रचित वेद तैजस नाम की व्याख्या ग्रन्थ उपलब्ध है।

7.2.3 भरद्वाजशिक्षा

तैत्तिरीय संहिता के साथ इस ग्रन्थ का सम्बन्ध है। यह ग्रन्थ संहिता शिक्षा इस नाम से व्यवहार में लाया गया है। इस ग्रन्थ का प्रधान लक्ष्य ही संहिता पदों की शुद्धता ही है। उसके लिए विशिष्ट नियमों का इस ग्रन्थ में विवरण है। कुछ विशिष्ट शब्दों का सङ्कलन भी विद्यमान है। तैत्तिरीय संहिता में वृजिन् -शब्द का अर्थ उपलब्ध होता है। किन्तु जकार का उदात्त स्वर युक्त होने पर अकार युक्त वृजन इस प्रकार होता है **(वृजने 'ज' उदात्तश्चेद् अकारेण सहोच्यते)**। इस प्रकार से पर्शु-शब्द अन्तोदात्त हो तो 'परशु' इस रूप में जाना जाता है। इस प्रकार से ही यहाँ नियम प्रदर्शित है। अक्षर क्रम से ग्रन्थ का सङ्कलन है। शिक्षा के अन्य विषयों का यहाँ पर अभाव है। यह शिक्षा प्राचीन प्रतीत होती है। श्री निवास दीक्षित द्वारा रचित सिद्धान्त शिक्षा भी इस शिक्षा के विषय प्रतिपादन में ही अनुसरण करती है।

7.2.4 पाणिनीयशिक्षा

यह शिक्षा अत्यन्त प्रसिद्ध और लोकप्रिय है। लौकिक के और वैदिक के शास्त्रों के लिए यह शिक्षा नितान्त उपयोगी होने से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में साठ श्लोक है। इन श्लोकों में उच्चारण विधि सम्बद्ध विषयों का संक्षिप्त किन्तु उपयोगी विवरण दिया हुआ है। इस ग्रन्थ के रचयिता का नाम आज भी अज्ञात ही है। ग्रन्थ के अन्त में पाणिनि का उल्लेख दाक्षी पुत्र नाम से किया है।

'शङ्करः शाङ्करीं प्रादात् दाक्षीपुत्राय धीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचम् इति स्थितिः॥' **(पा. शि. ४६)**

इस उल्लेख से स्पष्ट होता है की पाणिनि इस ग्रन्थ के लेखक नहीं है। पाणिनि मत के अनुयायी किसी वैयाकरण ने इस उपयोगी ग्रन्थ का निर्माण किया है। इस ग्रन्थ के ऊपर अनेक प्रकार की टीका भी उपलब्ध होती है। परिमाण में छोटी होने पर भी सारभूत होने से इसके अनुशीलन से संस्कृत भाषा में उपयोगी विषय का सुन्दर ज्ञान प्राप्त कर सकते है। शिक्षासङ्ग्रह नाम के ग्रन्थ में इकट्ठे प्रकाशित बत्तीस शाखाओं का समूह है। ये शिक्षा चारों वेदों की विभिन्न शाखा से सम्बद्ध है। इन शिक्षाओं का ही यहाँ संक्षिप्त वर्णन देते हैं।

टिप्पणियाँ

7.2.5 याज्ञवल्क्यशिक्षा

परिमाण से यह शिक्षा बड़े आकार में है। यहाँ दो सौ बत्तीस (२३२) श्लोक हैं। इसका सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा के साथ है। इस शिक्षा में वैदिक स्वरों का उदाहरण के साथ विशिष्ट और विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। लोप-आगम-विकार-प्रकृतिभाव आख्यानों के चार प्रकार सन्धियों का भी यहाँ विवेचन किया है। वर्णों के विभेद-स्वरूप-साम्य-वैषम्य आदि का भी वर्णन इस शिक्षा में किया है।

7.2.6 वासिष्ठीशिक्षा

इसका भी सम्बन्ध वाजसनेयी संहिता के साथ ही है। इस संहिता में ऋग मन्त्र यजु मन्त्र के भेद का अत्यधिक विस्तार से वर्णन किया है। इस शिक्षा के अनुसार से सम्पूर्ण शुक्ल यजुर्वेद की संहिता में ऋग्वेद के १२६७ मन्त्र हैं। यहाँ यजुर्वेद की संख्या २८२३ है। यह संख्या विभाग इस वेद के अध्ययन कर्ताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है।

7.2.7 कात्यायनीशिक्षा-

इस शिक्षा में केवल तेरह श्लोक हैं। जयन्त स्वामी नाम के किसी विद्वान ने इसकी टीका को लिखा था।

7.2.8 पाराशरीशिक्षा

इस शिक्षा में एक सौ साठ (१६०) श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में भी सन्धि-स्वर-वर्ण आदि के विषयों पर विवेचन किया है।

7.2.9 माण्डव्यशिक्षा

इस शिक्षा का सम्बद्ध शुक्ल यजुर्वेद के साथ है। इस ग्रन्थ में वाजसनेयी संहिता में प्रयुक्त नाम औष्ठ्य वर्णों का सङ्ग्रह विद्यमान है। अत्यधिक परिश्रम से समस्त संहिता का अध्ययन करके उपयोगी इस ग्रन्थ को लिखा है। सामान्य शिक्षा ग्रन्थों से इस ग्रन्थ की विशिष्टता भी स्पष्ट ही है। स्वर का और वर्ण का विचार नहीं करके केवल होठ से उच्चारित वर्णों का ही यहाँ सङ्ग्रह किया है।

7.2.10 अमोघानन्दिनीशिक्षा

इस ग्रन्थ में एक सौ तीस (१३०) श्लोक है। यहाँ स्वर का और वर्ण का सूक्ष्म विचार किया है। इस ग्रन्थ का संक्षिप्त संस्करण भी है। इस संस्करण में केवल सत्तरह श्लोक ही हैं।

7.2.11 माध्यन्दिनीशिक्षा

इस ग्रन्थ में केवल द्वित्व नियमों का ही विवेचन है। दो प्रकार का यह ग्रन्थ है, एक बड़े आकार का, दूसरा लघु आकार का। पहला गद्यात्मक है और दूसरा पद्यात्मक है।

7.2.12 वर्णरत्नप्रदीपिका

इस ग्रन्थ के रचयिता भारद्वाज वंशीय कोई अमरेश नाम का विद्वान है। इसका भी समय अज्ञात ही है। इस ग्रन्थ में दो सौ सत्ताईस (२२७) श्लोक हैं। नाम अनुरूप से ही इस ग्रन्थ में वर्ण-स्वर-सन्धि साङ्गोपाङ्ग का विवेचन है।

7.2.13 केशवीशिक्षा

इसके रचयिता आस्तिक मुनि के वंशज गोकुल दैवज्ञ का पुत्र केशव दैवज्ञ है। यहाँ दो प्रकार की शिक्षा उपलब्ध होती है। पहली शिक्षा में माध्यन्दिन शाखा से सम्बद्ध परिभाषाओं का विस्तृत विवेचन है। यहाँ प्रतिज्ञा आदि सम्पूर्ण नौ सूत्रों की विस्तृत व्याख्या उदाहरण के साथ यहाँ दी है। दूसरी शिक्षा पद्यात्मक है, यहाँ इक्कीस पद्यो में स्वर का विस्तृत विचार किया है।

7.2.14 मल्लशर्मशिक्षा

इस ग्रन्थ के रचयिता उपमन्य गोत्रीय अग्निहोत्री खगपति महोदय के पुत्र मल्लशर्मा इस नाम का कोई कान्य कुब्ज ब्राह्मण है। इस शिक्षा में चौसठ (६४) श्लोक है। लेखक के कथन अनुसार से इसकी रचना १७८१-शताब्दी है।

7.2.15 स्वराङ्कशशिक्षा

इस शिक्षा के रचयिता जयन्त स्वामी नाम का कोई विद्वान था।

7.2.16 षोडशश्लोकीशिक्षा-

श्री रामकृष्ण नाम के विद्वान ने षोडश श्लोकी शिक्षा इस नाम का एक लघु ग्रन्थ प्रणीत है, जहाँ स्वर का और व्यञ्जन का विचार किया है।

7.2.17 अवसाननिर्णयशिक्षा-

वैदिक व्याकरण सम्बन्धी पद प्रयोग नियमो के ज्ञान के लिए स्वर वर्ण आदि ज्ञान की सुलभता के लिए इस शिक्षा की रचना अनन्तदेव विद्वान ने की।

7.2.18 प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा

इस पाण्डित्य पूर्ण शिक्षा शास्त्र को सदाशिव पुत्र बालकृष्ण नाम के किसी विद्वान ने की है। यह शिक्षा परिमाण में बड़ी है। यह शिक्षा शास्त्र कुछ इस प्रकार प्राचीन शास्त्र की आलोचना करके ही इसकी रचना की। इस ग्रन्थ में कुछ व्याकरण प्रयोग परक पद्य ग्रन्थ के अन्त में उद्धृत है। स्वर वर्ण आदि शिक्षा का सम्पूर्ण विषयों का सरल साङ्ग और उपाङ्ग सहित यहाँ विवेचना की है। शिक्षा शास्त्र के यथार्थ ज्ञान लाभ के लिए यह ग्रन्थ अत्यधिक उपयोगी है।

7.2.19 नारदीयशिक्षा

यह शिक्षा ग्रन्थ सामवेद से सम्बद्ध है। यह अत्यन्त विस्तृत और उपयोगी शिक्षा है। इस ग्रन्थ की शोभाकर भट्ट के द्वारा विस्तृत व्याख्या भी लिखी गई है। यह व्याख्या नितान्त प्रौढ और प्रसिद्ध है। सामवेद के स्वरों के रहस्य को जानने के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। सामवेद की दो दूसरी भी शिक्षा (१७) **गौतमी** (१८) और **लोमेशी शिक्षा।**

7.2.20 माण्डूकीशिक्षा

यह अथर्ववेद से सम्बद्धित शिक्षा है। इसमें एक सौ उन्नासी (१७९) श्लोक हैं। अथर्ववेद के स्वरों का और वर्णों का उचित ज्ञान के लिए यह शिक्षा अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। कुछ अन्य भी शिक्षा ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जिनका नाम-निर्देश ही पर्याप्त होगा। (२०) **क्रमसन्धानशिक्षा**, (२१) **गलदृक्शिक्षा**, (२२) **मनःस्वार-शिक्षा**। इन ग्रन्थों की रचना याज्ञवल्क्य मुनि ने की है।

पाठगत प्रश्न 7.3

1. भरद्वाज शिक्षा का अन्य नाम क्या है?
2. पाणिनीय शिक्षा में कितने श्लोक है?
3. याज्ञवल्क्य शिक्षा में किसका विवेचन किया है?
4. वासिष्ठी शिक्षा का सम्बन्ध किस संहिता के साथ है?
5. कात्यायनी शिक्षा में कितने श्लोक हैं?
6. पाराशरीशिक्षा में कौन से विषयों पर विवेचना की है?
7. अमोघनन्दिनीशिक्षा में कितने श्लोक हैं?
8. केशवीशिक्षा का रचयिता कौन है?
9. मल्लशर्मशिक्षा का रचयिता कौन है?
10. माण्डूकीशिक्षा किस वेद से सम्बद्धित है?

7.3 कल्प

वेदों का दूसरा अङ्ग कल्प है। ब्राह्मण काल में याग का उतना प्रचार हुआ की उनका यथावत ज्ञान के लिए पूर्ण परिचय देने वाले ग्रन्थों की आवश्यकता अनुभव हुई। उन आवश्यकता को ही कम शब्दों के द्वारा पूरा करने के लिए कल्प सूत्रों की रचना हुई। वेद विहित कर्मों की व्यवस्था के लिए क्रम पूर्वक कल्प शास्त्र में कल्पना की। और कहा -

'कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्'। इति।

कल्पसूत्र दो प्रकार के होते हैं - **श्रौतसूत्र और स्मार्त्तसूत्र**। वेद युक्त याग विधानों के प्रकाशक ही श्रौतसूत्र है। स्मार्त्तसूत्र भी दो प्रकार के है - गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र।

श्रौतसूत्र में अग्नित्रय आधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, पशुयाग और अनेक प्रकार के सोमयाग के विषयों का उल्लेख है।

मुख्य रूप से कल्प सूत्र चार प्रकार के है -**१. श्रौतसूत्र, २. गृह्यसूत्र, ३. धर्मसूत्र, ४ और शुल्वसूत्र।**

श्रौतसूत्र में उनके अनुष्ठान आचार यागों का वर्णन विद्यमान है, जिनका सम्पादन तीन वर्णों के द्वारा अवश्य करना चाहिए। सोलह संस्कारों का विशिष्ट वर्णन भी गृह्यसूत्रों में किया है। मुख्य रूप से गृह्यसूत्र में गृह्याग्नि सम्बद्ध यागों का उपनयन विवाह श्राद्ध आदि संस्कारों का विस्तृत विवरण दिया है।

धर्मसूत्रों में धार्मिक नियम, प्रजाओं और राजा के कर्त्तव्यों की चर्चा, चार वर्ण, चार आश्रम, उनका धर्म पूर्ण रूप से निरूपण किया है। धर्मसूत्र में चार वर्णों का और आश्रमों का तथा राजा के भी कर्तव्य का निर्देश है। ये तीन ही वस्तुतः प्रधान रूप से कल्पसूत्र के मत है।

चौथा शुल्वसूत्र तो विशेष रूप से वेदि निर्माण प्रकार का प्रतिपादन करता है। इस सूत्र का वैज्ञानिक महत्त्व है। मुख्य रूप से शुल्बसूत्र भी कल्पसूत्र ही है, वह श्रौतसूत्र के अन्तर्गत आता है। शुल्व माप प्रक्रिया है। यह सूत्र ही भारतीय ज्यामिति शास्त्र का प्रवर्तक है। पाश्चात्यों के द्वारा पाइथागोरस आदि ज्यामिति शास्त्र रचे हुए है, जो कल्पना की है, वे शुल्वसूत्र को देखकर दृढ़ इच्छा करते हैं की यह ज्यामिति शास्त्र भारतीयों के द्वारा पाश्चात्य ज्यामिति शास्त्र उत्पत्ति से बहुत वर्षों पहले ही प्रकट कर दी है।

कल्पसूत्र उसका इसका सम्बन्ध बन्धन भेद युक्त है। वहाँ -

ऋग्वेद के कल्पसूत्र - आश्वलायन,और शाङ्खायन। इन दोनों ही कल्पसूत्र के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र सम्मिलित विद्यमान है। शुक्ल यजुर्वेद के कल्पसूत्र - कात्यायन श्रौतसूत्र, पारस्कर गृह्यसूत्र,और कात्यायन शुल्बसूत्र है।

कृष्ण यजुर्वेद के कल्पसूत्र - बौधायनसूत्र, और आपस्तम्बसूत्र है। इन दोनों कल्पसूत्र के श्रौत गृह्य धर्म शुल्वसूत्र सभी ही हैं ये दोनों ग्रन्थ पूर्ण रूप में है।

सामवेद के कल्पसूत्र - लाट्यायन श्रौतसूत्र, और द्राह्यायण। जैमिनीय शाखा का श्रौतसूत्र, जैमिनि गृह्यसूत्र, गोभिल गृह्यसूत्र, और खादिर गृह्यसूत्र है।

सामवेद में ही आर्षेयकल्प की भी गणना होती है। यह कल्प ही मशक कल्पसूत्र नाम से भी प्रसिद्ध है। यह सूत्र लाट्यायन श्रौतसूत्र से प्राचीन है। अथर्ववेद का कल्पसूत्र - वैतान श्रौतसूत्र और कौशिकसूत्र है। वैतान सूत्र अधिक प्राचीन नहीं है, और कौशिकसूत्र में अभिचारक्रिया का वर्णन है।

पाठगत प्रश्न 7.4

1. कल्पसूत्र के दो प्रकार लिखिए।
2. स्मार्तसूत्रों के दो प्रकार लिखिए।
3. मुख्य रूप से कल्पसूत्र कितने है?
4. ऋग्वेद का कल्पसूत्र क्या है?
5. सामवेद का कल्पसूत्र क्या है?

7.4 व्याकरण

वेदों के रक्षक होने से, वेद के अर्थ का ज्ञान कराने में सहायक होने से, प्रकृति प्रत्यय उपदेश के साथ पद स्वरूप का प्रतिष्ठापक होने से अर्थ निर्णय करने के साधनों में श्रेष्ठ साधन के प्रयुक्त होने से व्याकरण नाम अङ्ग नितान्त ही महान है, और वेदाङ्गों में यह श्रेष्ठ है। **'व्याक्रियन्ते व्युत्पाहान्ते शब्दाः अनेनेति व्याकरणम्'** इति व्युत्पत्तेः व्याकरण पद का अर्थ होता है पद मीमांसाकर शास्त्र के अनुसार। व्याकरण वेद के मुख के समान समझना चाहिए –

'मुखं व्याकरणं स्मृतम्।'

भाषा लोक व्यवहार में प्रवृत्त कराती है। यदि भाषा नहीं होती तो यह जगत अन्धकार रूपी रात से ढका रहता। जैसा दण्डि ने कहा –

'इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥'

भाषा की शुद्धि में व्याकरण की अपेक्षा होती ही है। व्याकरण ज्ञान से शून्य उचित शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकता है।

स्वयं ऋक् संहिता में इस व्याकरण शास्त्र की प्रशंसा में अनेक मन्त्र भिन्न-भिन्न स्थानों में उपलब्ध होते है। ऋग्वेद के एक अत्यन्त प्रसिद्ध मन्त्र में व्याकरण को बैल के रूप में प्रतिपादन किया है –

चत्वारि शृङ्गाः त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्ता सोऽस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्याम् आविवेश॥ **(ऋ. ४/५८/६)**

इत्यादि शब्दों के द्वारा उसकी प्रशंसा सुनते है। इस बैल रूप व्याकरण के चार सींग हैं – नाम-आख्यात-उपसर्ग और निपात रूप है। इसके तीन पाद है भूत-भविष्य और वर्तमान। सुप् और तिङ् दो सिर है और सात विभक्ति सात हाथ है। हृदय में, सिर में और कण्ठ में तीन जगह से

बंधा हुआ बैल शब्द करता है। इस प्रकार के व्याकरण ज्ञान से जो अनजान है, वह जानता हुआ भी नहीं जानता है, देखता हुआ भी नहीं देखता है, सुनता हुआ भी नहीं सुनता है। किन्तु जो मनुष्य व्याकरण शास्त्र को जानने वाला होता है, उसके समीप वाणी सुसज्जित कामिनी के समान आकर के सम्पूर्ण भाव से समर्पित होती है –

उतत्वः पश्यन् न ददर्श उतत्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासाः॥

आचार्य वररुचि ने व्याकरण शास्त्र की महानता का गान किया जब उसके अध्ययन के पांच प्रयोजन का प्रतिपादन किया तब महर्षि पतञ्जलि ने उस अध्ययन के लिए तेरह प्रयोजन बताते हैं। वह व्याकरण शास्त्र हमेशा प्राचीन शास्त्र हैं, ऐसा जानते है। व्याकरण ज्ञान शून्य साधु शब्दों का प्रयोग चाहते है। वेद की रक्षा के लिए व्याकरण अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए, लोप, आगम, वर्ण विकार को जानने वाला ही पुरुष अच्छी प्रकार से वेदों का पालन करते हैं, ऐसा पतञ्जलि ने कहा है। वेद रक्षा क्षमता ही व्याकरण के वेदाङ्ग का भी समर्थ करता है। व्याकरण के सभी प्रयोजन बताये गये महाभाष्य में – 'रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्।' वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन करने चाहिए। ऊह खलु भी, न सभी लिङ्गों के द्वारा, न सभी विभक्ति के द्वारा वेद में मन्त्र पढ़े गये है, यज्ञ गत पुरुष जिसको अवश्य यथा योग्य विपरिणाम करना चाहिए,उनको अवैयाकरण यथायोग्य विपरिणाम नहीं कर सकते है। इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए। इसी प्रकार अन्य भी अपभाषण, दुष्ट शब्द, अर्थज्ञान, धर्मलाभ नामकरण आदि प्रयोजनों की व्याख्या महाभाष्य में की है।

व्याकरण शास्त्र तो अत्यंत प्राचीन शास्त्र है। वैदिक मन्त्रों में उपलब्ध उस उस पद विषय की व्युत्पत्ति भी ऊपर में अभिधान अथवा समर्थ करता है –

१. **'यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवाः'** (ऋग.१/१६४/५०)। यजयाच-इत्यादि से अनङ् है।

२. **'ये सहांसि सहसा सहन्ते'** (ऋग. ६/६६/९)। सह धातू से असुन् प्रत्यय उणादि में।

३. **'धान्यमसि धिनुहि'** (यजु. १/२०)। धिनोतेर्धान्यम्, महाभारते में।

४. **'केतपूः केतं नः पुनातु'** (यजु. ११/७)। और क्विप्।

५. **'तीर्थैस्तरन्ति'** (अथर्व. १८/४/७)। पातृतुदिव... इति स्थक।

व्याकरणशास्त्र के प्रमाणभूत आचार्य पतञ्जलि ने व्याकरणशास्त्र के ऊपर निर्दिष्ट प्रयोजन वर्णन 'चार सींग', 'चार वाणी', 'उतत्वः', 'सक्तुमिव', 'सुदेवोऽसि' – इत्यादि मन्त्र पांच उद उद्धरण दिया। पतञ्जलि के भी प्राचीनतर यास्क ने भी 'चत्वारि वाक्' इत्यादि मन्त्र की व्याख्या व्याकरण शास्त्र परक ही की है। व्याकरण यह पद यस्मात् धातु से निष्पन्न होती है, उसका भी मूल अर्थ यजुर्वेद में है – 'दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्त्वाऽनृते प्रजापतिः' इस वाक्य में प्रयुक्त प्राप्त होते है।

व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति अधिकृत तो निश्चितता से कुछ भी कहना असम्भव है। यह तो कह सकते है की उपलब्ध वैदिक पदपाठो से पहले ही व्याकरण शास्त्र पूर्णता को प्राप्त हुआ। प्रकृति

प्रत्यय धातु उपसर्ग और समास पदों का विभाग करने से निर्धारित होता है कि उसके बीते हुए काल को अनेक शताब्दी बीत गई। वाल्मीकि रामायण के रचना काल में व्याकरण शास्त्र का अध्ययन और अध्यापन अच्छी प्रकार से प्रचलित था जो निम्न श्लोक बता रहे है –

'नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरताऽनेन न किञ्चिदपशब्दितम्।।'

इत्यादि श्लोकों से विदित होता है। महाभारत युद्धकाल वर्तनि यास्क निरुक्त में बहुत व्याकरण आचार्यों का उल्लेख देखते हैं। आचार्य शाकटायन ने तो अपना व्याकरण यास्क से भी पहले लिखा था। तैत्तिरीयसंहिता में इस विषय का सबसे प्रथम तथा प्राचीनतम उल्लेख प्राप्त होता है –

'वाग् वै पराच्य व्याकृताऽवदत्। ते देवा इन्द्रम् अब्रुवन् – इमां नो वाचं व्याकुर्विति। सोऽब्रवीत् – वरं वृणे, मह्यं चौवेष वायवे च सह गृह्यता इति। तस्माद् ऐन्द्रवायवः सह गृह्यते। तामिन्द्रो मव्यातोः वक्रम्य व्याकरोत्। तस्मादियं व्याकृता वामुद्यते।' (तै.सं.६।४।७।३)।

आचार्य पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में लिखा है –

'बृहस्पतिश्च वक्ता। इन्द्रश्च अध्येता। दिव्यं वर्षसहस्रम् अध्ययनकालः। अन्तं च न जगाम।' (महाभाष्य में पस्पशाह्निकम्)।

इस प्रकार अगाह और अनन्त शब्द वर्ण है। इसलिए ही पण्डित समाज में एक प्रचलित और प्रसिद्ध गाथा है –

'समुद्रवद् व्याकरणं महेश्वरे तदर्धकुम्भोद्धरणं बृहस्पतौ।
तद्भागभागाच्च शतं पुरन्दरे कुलाग्रबिन्दूत्पतितं हि पाणिनौ।।'

पतञ्जलि मुनि ने लिखा है –

'पुरा कल्प एतद् आसीत् संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते।' इससे भी व्याकरण के प्रति लोक की प्रवृत्ति दीर्घ काल से थी ऐसा जाना जाता है।

जब कोई भी भाषा व्यवहार में दीर्घ काल से चली आ रही है तब उस भाषा का ज्ञान व्याकरण मन्त्र के द्वारा जाना नहीं जा सकता है। व्याकरण ही भाषा का स्वरूप सङ्घटन और सभी का ज्ञान कराता है। उस व्याकरण से ही भाषा ज्ञान लाभ के लिए सभी अष्ट शक्ति ग्राहकों के मध्य में सबसे उच्च स्थान पर बैठते है। व्याकरण का नितान्त ही उपयोग और श्रेष्ठता वहाँ वहाँ देखनी चाहिए उसकी महिमा विद्वानों के द्वारा बताई गई है –

'यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत्।।
शब्दशास्त्रमनधीत्य यः पुमान् वक्तुमिच्छति वचः सभान्तरे।
बन्धुमिच्छति वने मदोत्कटं हस्तिनं कमलनालतन्तुना।।'

व्याकरण को अनेक वैयाकरणों व महर्षियों के द्वारा लिखा गया है। उस व्याकरण कर्ताओं में विद्वानों में - इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, ये आठ बहुत ही प्रसिद्ध हैं। केवल इन आठ ही व्याकरण कर्ताओं का व्याकरण नहीं है, अपितु अन्य आचार्यो का भी व्याकरण सुना जाता है। जैसे - कौमार सारस्वत और शाकल व्याकरण। व्याकरणकारों का और इसलिए व्याकरण को अधिकृत करके इन दो श्लोक की रचना की है। -

'इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥
ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम्॥'

और अन्य आठ व्याकरण कर्ता -

'प्रथमं प्रोच्यते ब्राह्मं द्वितीयमैन्द्रमुच्यते।
याम्यं प्रोक्तं ततो रौद्रं वायव्यं वारुणं तथा॥
सावित्रञ्च तथा प्रोक्तमष्टमं वैष्णवं तथा।'

(भविष्यपुराण में ब्राह्मपर्वणि)

लघु त्रिमुनि कल्पतरु करने पर तो नौ व्याकरण को स्मरण करते हैं -

'ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम्॥'

इन व्याकरणों में आठ प्रकार के नाम ही प्रसिद्ध हैं। जैसे भास्कर के द्वारा कहा गया है - 'अष्टौ व्याकरणानि षट् च भिषजां व्याचष्टा ताः संहिताः' इस प्रकार भविष्य पुराण में उक्त व्याकरण तो प्रसिद्ध है। ऐन्द्र आदि ही प्रसिद्ध है।

इनके निर्देश के द्वारा इन्द्र ने व्याकरण की रचना की यह वर्णन प्रकट ही होता है। यह व्याकरण ग्रन्थ रूप में था इसके भी प्रमाण प्राप्त होते हैं। जैसे - नन्दिकेश्वर काशिका-वृत्ति में तत्त्वविमर्शनी व्याख्या में उपमन्यु के द्वारा लिखा गया है - **'तथा चोक्तम् इन्द्रेण अन्तर्वर्णसमुद्भूता धातवः परिकीर्तिता इति।'**

वररुचि ने ऐन्द्र निघण्टु इसके आरम्भ में ही इसका निर्देश किया है -

'पूर्वं पद्मभुवा प्रोक्तं श्रुत्वेन्द्रेण प्रकाशितम्।
तदबुधेभ्यो वररुचिः कृतवानिन्द्रनामकम्॥'

वोपदेव ने संस्कृत के मान्य व्याकरण सम्प्रदायों में प्रथम स्थान इन्द्र के लिए ही दिया है -

'इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमर्जैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥'

सारस्वत प्रक्रिया में अनुभूति स्वरूप आचार्य के द्वारा कहा कहा गया है –

'इन्द्रादयोऽपि यस्यान्तं न ययुः शब्दवारिधेः।
प्रक्रियां तस्य कृत्स्नस्य क्षमो वक्तुं कथं नरः॥'

डॉ. वर्नल महोदय के कथन अनुसार से तमरल भाषा का आदि व्याकरण तोलकप्पियं इस नाम वाले व्याकरण में ऐन्द्र व्याकरण से ही सहायता ली गई है। वररुचि ने 'भवन्ती', 'अद्यतनी', 'हस्तनी' इत्यादि पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है, वे पाणिनि के 'लट्, लुङ्, लिट्' इत्यादि शब्दों से प्राचीन है। इनका प्रयोग ऐन्द्र व्याकरण में भी है ऐसा अनुमान किया जाता है।

'वर्तमाने लट् (३/२/१२३)-वार्तिक-प्रवृत्तस्य विरामे शिष्या भवन्त्यावर्तमानत्वात्। भवन्तीति लटः पूर्वाचार्यसंज्ञा' (कैयट)।

गोपथ ब्राह्मण में व्याकरण विषयों का निर्देश है। स्पष्ट रूप से व्याकरण शास्त्र का इतिहास देखने से ज्ञात होता है की भारत में प्राचीन अनेक व्याकरण कर्ता आचार्य थे। वहाँ आपिशलि, शाकटायन, गालवेन्द्र आदि व्याकरण कर्ताओं का उल्लेख किया है। परन्तु आजकल तो पाणिनीय व्याकरण ही प्राप्त होता है। उनका बनाया हुआ ग्रन्थ– अष्टाध्यायी सभी अङ्गों में सुललित होकर के विराजमान है। वहाँ वैज्ञानिक पद्धति से व्याकरण का प्रतिपादन किया है। जितनी सुललित देववाणी का शास्त्रीय विवेचन वहाँ देखते हैं, अन्य जगह उस प्रकार की सुललिता दिखाई नहीं देती है। वहाँ लौकिक वैदिक दोनों प्रकार के व्याकरण को बताया गया है।

पाठगत प्रश्न 7.5

1. व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति को लिखिए।
2. इदमन्धतमः कृत्स्नम् इत्यादि श्लोक किसने लिखा है?
3. व्याकरण के शरीर की किस अङ्ग से तुलना की है?
4. ऋग्वेद में व्याकरण के किस रूप का प्रतिपादन किया है?
5. व्याकरण कर्ताओं में अनेक विद्वानों के अनुसार कितने वैयाकरण सुप्रसिद्ध है, और वे कौन कौन है?

7.5 निरुक्त

निरुक्त में कहते है उसे जो विशेष रूप से उपदेश देता है और उसके अर्थों का बोध कराने के लिए पदजात का जहाँ वर्णन किया है उसे निरुक्त कहते हैं। निरुक्त निघण्टु की महत्त्वपूर्ण टीका है। निघंटु में वेद के कठिन शब्दों का संकलन है। निघण्टु ग्रन्थ की सङ्ख्या विषय में पर्याप्त मतभेद है। आजकल उपलब्ध निघण्टु ग्रन्थ एक ही है, परन्तु प्राचीन परम्परा के अनुशीलन से

ज्ञात होता है की निघण्टु ग्रन्थ अनेक है। (द्रष्ट. दुर्गावृत्ति पृ. ३) निरुक्त के आरम्भ में 'निघण्टुम्' 'समाम्नाय' इस पद से ज्ञात होता है। उसके द्वारा इसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है। महाभारत के मोक्षधर्म पर्व अनुसार से इस निघण्टु के रचयिता प्रजापति कश्यप थे –

'वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।
निघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्॥
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः॥'

(महा. मो. ध. प. अ. ३४२, श्लो. पृ. ८६-८७)

वर्तमान में निघण्टु ग्रन्थ में 'वृषाकपि' शब्द लिखा हुआ प्राप्त होता सङ्गृहीत है। इसलिए पहले कहे हुए कथन के अनुसार से ज्ञात होता है की महाभारत काल में इस निघण्टु ग्रन्थ के निर्माता पद से प्रजापति कश्यप ही प्रसिद्ध थे। निघण्टु में पांच अध्याय हैं। आदि के तीन अध्याय नैघण्टुक काण्ड इस नाम से जाने जाते हैं। चौथा अध्याय नैगम काण्ड नाम से, पांचवा अध्याय दैवत काण्ड इस पद से जाना जाता है। पहले तीन अध्यायों में पृथ्वी आदि बोध कराने वाले अनेक शब्दों का एक जगह ही सङ्ग्रह है। दूसरे काण्ड को एकपदी भी कहते हैं। नैगम इस पद का यह तात्पर्य है की इनकी प्रकृति प्रत्यय का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है – अनवगतसंस्कारांश्च निगमान्। दैवत काण्ड में देवता के स्वरूप स्थान का निर्देश प्राप्त होता है।

7.5.1 निघण्टु-व्याख्याकार

अभी निघण्टु ग्रन्थ की एक ही व्याख्या उपलब्ध होती है। इस व्याख्या के रचयिता देवराजयज्वा है। इनके दादा जी का नाम भी देवराजयज्वा ही था। इनके पिता का नाम यज्ञेश्वर है। यह विद्वान रंगेशपुरी इस नाम की प्रसिद्ध नगर के पास में किसी भी गाँव के निवासी थे। नाम से प्रतीत होता है की ये विद्वान दक्षिणभारत के निवासी थे। इनके समय के विषय में दो मत प्रचलित है। कुछ विद्वानों के मत में यह विद्वान सायण से बाद में थे, किन्तु वास्तव में सायण से यह पहले ही थे। आचार्य सायण के द्वारा ऋग्वेद के मन्त्र का (१/६२/३) अपने भाष्य में निघण्टु भाष्य वचन का उल्लेख किया है। यह उल्लेख देवराजयज्वा के भाष्य में भी कुछ पाठान्तर के रूप में उपलब्ध होता है। इस भाष्य से अतिरिक्त कोई भी अन्य निघण्टु भाष्य विद्यमान नहीं है। देवराजयज्वाने अपने भाष्य के उपजीव्य के रूप में क्षीरस्वामी तथा अनन्त आचार्य की निघण्टु व्याख्या का उल्लेख किया है। जैसे – 'इदं च ..... क्षीरस्वामी अनन्ताचार्यकृतां निघण्टुव्याख्यां ..... निरीक्ष्य क्रियते।' अनन्ताचार्य का यहाँ पर ही प्रथम उल्लेख हमको प्राप्त होता है। क्षीरस्वामी के मत का उल्लेख यहाँ पर अत्यधिक किया है। क्षीरस्वामी अमरकोश के प्रसिद्ध टीकाकार हैं। यज्वा का उदाहरण 'अमरकोशोद्घाटन में' एक समान ही उपलब्ध होता है। इस कारण निघण्टु व्याख्या यज्वन का अभिप्राय इस अमरकोश की व्याख्या से प्रतीत होता है। इस भाष्य का नाम – निघण्टु-निर्वचनम् इस प्रकार है। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार से देवराजयज्वा ने नैघण्टुक काण्ड के निर्वचनों का ही अधिक विस्तार के साथ किया है (विरचयति देवराजो नैघण्टुककाण्डनिर्वचनम् –श्लो. ६)। अन्य

टिप्पणियाँ

काण्डों की व्याख्या अत्यन्त कम आकार में है। इसकी रचना में स्कन्दस्वामी के ऋग्भाष्य टीका से, और महेश्वर की निरुक्त भाष्यटीका से सहायता ग्रहण की है। प्राचीन प्रमाण से भी सुन्दर उद्धरण और अनेक उदाहरण है। सायण से पूर्ववर्ति होने से इस व्याख्या का तथा निरुक्त में विशेष महत्त्व है।

7.5.2 निरुक्तकाल

निरुक्तयुगम् – निघण्टुकाल के बाद निरुक्त का समय प्रारम्भ होता है। दुर्गाचार्य के अनुसार से निरुक्तों की चौदह संख्या थी। ('निरुक्तं चतुर्दशप्रभेदम्'–दुर्गवृ. १/१३)। यास्क के निरुक्त में बारह निरुक्त कर्ताओं के नाम और उनके मत का निर्देश है। इनका नाम अक्षर क्रम से ही है –१. अग्रायण, २. औपमन्यव, ३. औदुम्बरायण, ४. और्णवाभ, ५. काथक्य, ६. क्रौष्टुकि, ७. गार्ग्य, ८. मालव, ९. तैटिकि, १०. वार्ष्यायणि, ११. शाकपूणी, १२. और स्थौलाष्ठिवि है। तेरहवे स्वयं यास्क ही हैं। इन तेरह आचार्यों के अतिरिक्त चौदहवां आचार्य कौन है। यह तो अज्ञात ही है। इन ग्रन्थकारों में शाकपूर्णी का मत अधिक उद्धृत है। बृहद्देवता में भी इस मत का उल्लेख प्राप्त होता है। बृहद्देवता में तथा पुराणों में शाकपूर्णी रथीतर शाकपूर्णि–नाम से जाने जाते हैं।

7.5.3 यास्क का निरुक्त

निरुक्त वेदों के छः अङ्गों में अन्यतम है। आजकल यास्क रचित निरुक्त ही इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इस निरुक्त में बारह अध्याय हैं। अन्त में दो अध्याय परिशिष्ट रूप से हैं। इस प्रकार से सम्पूर्ण ग्रन्थ यह चौदह अध्यायों में विभक्त है। परिशिष्ट भाग भी बाद का है ऐसा कह नहीं सकते है। क्योंकि यास्क के समान उव्वट भी परिशिष्ट भाग से परिचित थे। उव्वट ने अपने यजुर्वेद भाष्य में (१८/७७), निरुक्त में (१३/१३) उपलब्ध वाक्य का निर्देश किया है। इस कारण यह अंश भोजराजा से प्राचीन अपने आप सिद्ध है। यास्ककृत निरुक्त तो निघण्टु ग्रन्थ की व्याख्या है। अतः यह वेदाङ्ग नहीं हो सकता इस आशङ्का का समाधान के लिए – 'अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्।' अन्यच्च– 'एकैकस्य पदस्य सम्भाविता अवयवार्था यत्र निःशेषेण उच्यन्ते तद् अपि निरुक्तम्।' अतः इसका वेदाङ्गत्व सिद्ध ही है।

यास्क के प्राचीन होने में लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। पाणिनि से भी प्राचीन ये है। संस्कृत भाषा का जो विकास यास्क के निरुक्त में प्राप्त होता है, वह पाणिनि की अष्टाध्यायी में व्याख्या रूप से प्राचीनतर है। महाभारत के मोक्षपर्व अनुसार से निघण्टु कर्ता यास्क नहीं थे। इसके रचयिता कोई प्रजापति काश्यप थे –

'वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।
निघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तरम्।
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मस्य वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपि प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः॥'

(महा.मो.प.अ.३४२, श्लो. ८६–८७)

वहाँ ही निघण्टु के व्याख्याता यास्क थे, यह प्रमाण भी उपलब्ध है –

'लिपिविष्टेति चाख्यायां हीनरोमा च योऽभवत्।
तेनाविष्टं तु यत्किञ्चित् शिपिविष्टेति च स्मृतः॥
यास्को मामृषिरव्यग्रोऽनेकयज्ञेषु गीतवान्।
शिपिविष्ट इति ह्यस्माद् गुह्यनाम परोह्यहम्॥
स्तुत्वा मां शिपिविष्टेति यास्कः ऋषिरुदारधीः।
मत्प्रसादादधोनष्टं निरुक्तमधिजग्मिवान्॥'

(म.भा.शा. प. श्लो. ६९-७१)

इत्यादि प्रमाणित यास्क का क्या काल है इस विचार में प्रस्तुत किये है, क भाग में) महाभारत के ऊपर लिखे दो पद्यों का उद्धरण उस अर्वाचीन महाभारत से है, ख) पाणिनि ने अपने **वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्** ४/३/९८ इस सूत्र में कृष्ण अर्जुन को याद किया है उससे यह प्राचीन है। पाणिनि पाण्डुपुत्र अर्जुन से परवर्त्ती सिद्ध होते है। पाण्डुपुत्रों का समय तो राजतरङ्गिणी में ही वर्णित है –

'शतेषु षट्सु साऽर्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः॥'

यह सभी को विचार करना चाहिए ईस्वी से नौ सौ वर्ष पहले यास्क हुए ऐसा प्रतीत होता है। यास्क के इस ग्रन्थ की आवश्यकता अत्यधिक है। ग्रन्थ के आरम्भ में यास्क ने निरुक्त के सिद्धान्त का वैज्ञानिक प्रदर्शन किया। वेद के अर्थ अनुशीलन के लिए तब अनेक पक्ष थे। जिनके नाम इस प्रकार से दिये हुए है – १) अधिदैवत, २) अध्यात्म, ३) आख्यातसमय, ४) ऐतिहासिक, ५) नैदान, ६) नैरुक्त, ७) परिव्राजक, ८) और याज्ञिक।

इस मत निर्देश से वेदार्थ अनुशीलन के इतिहास के ऊपर विशिष्ट रूप से बल दिया गया है। यास्क का प्रभाव बाद के समय के भाष्य के ऊपर है। सायण तो इस पद्धति का अनुसरण करके वेदभाष्य रचना में प्रवृत हुए। यास्क की प्रक्रिया आधुनिक भाषावेत्ता प्रधान रूप से मानते है। निरुक्त का एकमात्र प्रतिनिधि होने से निरुक्त ग्रन्थ का सबसे अधिक महत्त्व है।

पाठगत प्रश्न 7.6

1. निघण्टु में कितने अध्याय हैं?
2. निघण्टु के पांचवे अध्याय में कौन सा काण्ड है?
3. निघण्टु ग्रन्थ के एक किसी व्याख्याकार का नाम उल्लेख है?
4. क्षीर स्वामी कौन है?

5. निरुक्त में किन निरुक्तकारों का नाम है?
6. शाकपूर्णि को पुराणों में किस नाम से जाना जाता है?
7. निरुक्त में कितने अध्याय है?

7.6 छन्द

छन्द वेद का पाँचवां अङ्ग है। वेद छन्दोबद्ध हैं, अत: उनके उच्चारण निमित्त के लिए छन्द का ज्ञान हमेशा अपेक्षित होता है। छन्द अभिधान इस अङ्ग से छन्दों के सभी उच्चारण विधि, उसके प्रकार और उसकी संख्या का ज्ञान होता है। उससे वैदिक मन्त्र उच्चारण के प्रयोजन के लिए छन्द का अध्ययन पहले करना उचित है। बिना छन्दोज्ञान से जो वेदों का अध्ययन, यजन, याजन आदि-कार्य करते है उनके वे सभी फल न देने वाले कार्य होते हैं।

कात्यायन ने यहाँ पर स्पष्ट रूप से कहा है –

'यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो दैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्त्ये वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति।' (सर्व अनुक्रमणी १।१)

संहिता ब्राह्मणों में छन्द का नाम उपलब्ध होने से छन्द अङ्ग की भी उत्पत्ति वैदिक युग में ही प्रतीत होती है। इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधि-ग्रन्थ है पिङ्गल आचार्य द्वारा 'छन्द:सूत्रम्'। इस ग्रन्थ की रचना कब हुई। इसका पर्याप्त परिचय का अभाव है। यह ग्रन्थ सूत्र रूप में है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रारम्भ से चौथे अध्याय के सात सूत्र तक वैदिक छन्दों का लक्षण दिया है। इस ग्रन्थ की हलायुध कृत 'मृतसञ्जीवनी' व्याख्या अत्यन्त प्रसिद्ध है।

लौकिक काव्यों में छन्द का और पादबद्धता का सम्बन्ध इस प्रकार है की पद्यों में ही छन्दों की योजना मानते हैं, तथा गद्य तो छन्दोहीन रचना रूप से स्वीकार होता है। वैदिक छन्द विषय में यह धारणा मान्य नहीं है। प्राचीन आर्य परम्परा के अनुसार से गद्य भी छन्दोबद्ध रचना ही मानते हैं। दुर्गाचार्य ने निरुक्त की अपनीवृत्ति में (७।२) किसी भी ब्राह्मण का वाक्य उदाहरण के रूप में लिखा है, जिसका आशय है छन्द के बिना वाणी अच्छी प्रकार से उच्चारण नहीं कर सकती है- **'नाच्छन्दसि वागुच्चरति'**। भरतमुनि ने भी छन्द के बिना शब्द को स्वीकार नहीं किया है –

'छन्दहीना न शब्दोऽस्ति, न छन्द: शब्दवर्जितम्।' **(ना.शा.१४।४५)**

कात्यायन मुनि के नाम से प्रख्यात ऋग यजुर्वेद परिशिष्ट में पहले बताये तथ्य को स्वीकार किया है –

'छन्दोभूतमिदं सर्वं वाङ्मयं स्याद् विजानत:।
नाच्छन्दसि न चापृष्टे शब्दश्चरति कश्चन॥'

पहले बताये मत के अनुसार से वेद का कोई भी इस प्रकार का मन्त्र नहीं है, जो छन्द के माध्यम से निर्मित नहीं है। फल स्वरूप यजुर्वेद के मन्त्र भी निश्चय रूप से गद्यात्मक है, वह भी छन्द

से रहित नहीं है। उनके द्वारा ही प्राचीन आचार्यों ने प्रथम अक्षर से आरम्भ करके १०४ अक्षर तक छन्दों का विधान अपने -अपने ग्रन्थों में किया है (द्रष्ट०-'वैदिकछन्दोमीमांसा' पृ. ८।९, रच० युधिष्ठिरमीमांसक)।

ऋग्वेद के और सामवेद के सभी मन्त्र छन्दोंबद्ध हैं। हृदय में स्थित कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति का नैसर्गिक माध्यम छन्द ही है। अन्तःस्थल का मर्म स्पर्श भाव की अभिव्यक्त करने के लिए कविगण छन्दों की कोमल कलेवर का ही अन्वेषण करता है। मन्त्रों का प्रधान उद्देश्य यज्ञों में उपास्य देवता के अनुकूल कार्य में ही है, तथा यह भी निश्चय से कह सकते है की देवता के अनुकूल प्रमुख साधन मन्त्रों का गान ही हो सकता है। मन्त्रों के छन्दोबद्ध होने से छन्दों के ज्ञान के विना वेद मन्त्र का सही उच्चारण नहीं कर सकते है, अतः छन्द इस वेदाङ्ग को अवश्य जानना चाहिए। शौनक विरचित ऋक्प्रातिशाख्य में अंतिम भाग में छन्दों की पर्याप्त विवेचन विद्यमान है। इन छन्दःशास्त्र में पिङ्गल छन्दसूत्र नाम ग्रन्थ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। 'छन्दःपादौ तु वेदस्य'।

'छन्द' इस पद की इस प्रकार की व्युत्पत्ति है - छन्दयति (पृणाति) इति छन्दों वा छन्दयति (आह्लादयति) इति छन्दः अथवा छन्द्यते अनेनेति छन्दः। छन्दांसि च्छादनात् इस यास्क कथन के होने से वेदार्थ वाचक छन्द इस पद की उत्पत्ति छद् (छादने) धातु से बनी है। वेद आवरण होने से छन्द यह पद युक्त ही है। दुर्गाचार्य ने कहा है - **'यदेभिरात्मानमाच्छादयन् देवा मृत्योर्बिभ्यतः, तत् छन्दसां छन्दस्त्वम्।'**

यह वाक्य छान्दोग्य उपनिषद् में भी पाठ भेद से प्राप्त होता है (१।४।२)। 'छन्दांसि छादनात्' (नि० ७।१९) इसके ही अर्थ की पुष्टि के लिए दुर्गाचार्य का पूर्वोक्त वाक्य है। वेदों में छन्दों की महानता के गीत बार-बार गाये। असुरों के द्वारा किये गए विघ्नों से रक्षा करने वाले उस, शक्तिशाली सैनिक के समान मत है। और कहा - **'दक्षिणतोऽसुरान् रक्षांसि त्वष्ट्रान्यपहन्ति त्रिष्टुब्जिर्वज्रो वैरविष्टुद्'।** वैदिक छन्दों में अनेक भेद, उपभेद होते है। प्रधान वैदिक छन्दों में इनकी गणना होती है - गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, प्रकृति, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, कृति, आकृति, विकृति,संस्कृति, अभिकृति, और उत्कृति। वैदिक छन्दों में यह विशिष्टता है की उनमें अक्षर गणना में निश्चित अक्षर होते हैं। वहाँ अक्षरों के गुरु लघु क्रम का कोई नियम विशेष नहीं हैं। और कात्यायन ने कहा है - **'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः।'** किन्तु लौकिक संस्कृत के छन्दों में यह बात नहीं है। वहाँ तो वृत्त के अक्षरों के छोटे बड़े में निश्चित ही है। शताब्दियों के बाद लौकिक छन्दों का विकास पहले के वैदिक छन्दों से ही हुआ इस प्रकार याद रखना चाहिए। लौकिक छन्दों के चार चरण होते है, किन्तु वैदिक छन्दों में यह नियम नहीं होते हैं।

पाठगत प्रश्न 7.7

1. छन्दः शब्द की व्युत्पत्ति क्या है?
2. कात्यायन ने छन्दों के विषय में क्या कहा है?

3. छन्द की शरीर के किस अङ्ग के साथ तुलना की है?
4. लौकिक छन्दों में कितने चरण होते है?
5. छन्द शास्त्र के प्रवर्तक कौन है?

7.7 ज्योतिष

यज्ञभाग अनेक प्रकार के हैं। कुछ यज्ञ संवत्सर संबन्धित हैं। और कुछ ऋतु संबन्धित है। और कुछ तिथि-मास-पक्ष-नक्षत्र परक है। यह भाव देवों में यज्ञभाग आदि के विधान भिन्न-भिन्न कालों में प्राप्त होते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण कहता है -

'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे राजन्य आदधीत। शरदि वैश्य आदधीत'

(तै. ब्रा. १।१)।

अष्टकाय में, फाल्गुनि में और पूर्णमास में दीक्षा का विधान का वर्णन किया है ताण्ड्य ब्राह्मण में दीक्षा के बारे में कहा गया है - **'एकाष्टकायां दीक्षेरन् फाल्गुनीपूर्णमासे दीक्षेरन्'** (ताण्ड्यब्रा. ५।९।१७)। प्रातः और शाम को अग्नि में दुग्ध आज्य के साथ हवन का विधान है - **'प्रातर्जुहोति, सायं जुहोति'** (तै.ब्रा. २।१।२)। यज्ञ की सफलता में केवल उचित विधान में ही नहीं है अपितु उचित समय के नक्षत्र की भी आवश्यकता होती है। असुरों की परिभाषा का निर्देश करते हुए वेद का वचन है - **'ते असुरा अयज्ञा अदक्षिणा अनक्षत्राः। यञ्च किञ्चाकुर्वत तां कृत्यामेवाकुर्वत।'** इसके विधान के लिए वेद आज्ञा पालन के लिए ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान होने पर ही यथायोग्य हो सकता है। उससे ज्योतिष नाम वेदाङ्ग का भी अपना वैशिष्ट्य है। यह ज्योतिष काल के विषय में बताने वाला शास्त्र है। मुहूर्त्त आदि का शोध करके करने योग्य यज्ञ आदि क्रिया विशेष फल के लिए कल्पना करते हैं, अन्यों की नहीं, और उस मुहूर्त्त ज्ञान को ज्योतिष कहते हैं, अतः इस ज्योतिष शास्त्र को वेदाङ्ग स्वीकार किया है। आर्च ज्योतिष में यह अर्थ कहा है -

'वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥'

चारों वेदों के भी अलग-अलग ज्योतिष शास्त्र थे, उनमे सामवेद का ज्योतिष शास्त्र उपलब्ध नहीं होता है, अन्य तीनों वेदों के ज्योतिष शास्त्र प्राप्त होते हैं।

१. ऋग्वेद के ज्योतिष शास्त्र है - आर्चज्योतिष, षट्त्रिंशत्पद्यात्मक।

२. यजुर्वेद का ज्योतिष शास्त्र है - याजुषज्योतिष, ऊनचत्वारिंशत्पद्यात्मक।

३. अथर्ववेद के ज्योतिष है - आथर्वणज्योतिष, द्विषष्टि-उत्तरशतपद्यात्मक।

इन तीनों ज्योतिष शास्त्रों के भी लेखक लगध नाम के आचार्य है। वहाँ याजुषज्योतिष के प्रमाण के लिए दो भाष्य भी प्राप्त होते है, एक सोमाकर द्वारा रचित प्राचीन है, दूसरा सुधाकर द्विवेदी

द्वारा नवीन रचना है। इस ज्योतिष शास्त्र के तीन वर्त्म है, जिससे इस शास्त्र को त्रिस्कन्ध कहते है। और कहा है –

'सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिश्शास्त्रमनुत्तमम्॥'

लगध–प्रणीत वेदाङ्ग ज्योतिष ग्रन्थ के श्लोकों का रहस्य क्या है, इस विषय का यथार्थ जानने के लिए विद्वानों के लिए भी कठिन है। इस ग्रन्थ की रचना के विषय में ३४०० वर्ष बीत गए ऐसा शङ्कर बालदीक्षित का विचार है। लोकमान्यतिलक, सुधाकर द्विवेदि, डॉ. थीवो आदि विद्वानों ने इस ग्रन्थ के श्लोको की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र का यह आदि ग्रन्थ है। मानते है, उससे पहले ज्योति के विषय में किसी ने कभी भी कोई भी रचना नहीं लिखी थी। वेदाङ्ग ज्योतिष शास्त्र के कर्त्ता असन्दिग्ध रूप से लगध ही थे।

'प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः॥' **(आर्चज्योतिष श्लो.)**

किन्तु यह लगध कौन है। इस विषय में कोई भी नहीं जानते है। यज्ञ विधान के लिए ज्योतिष शास्त्र का इस महत्त्व को भास्कर आचार्य ने भी स्वीकार किया है –

'वेदास्तावत् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्यात् वेदाङ्गत्वं ज्योतिषशास्त्रस्योक्तमस्मात्॥'

(सिद्धन्तशिरोमणि)

वेदाङ्ग ज्योतिष के मत में ज्योतिष का स्थान वेदाङ्गों में सबसे ऊचा स्थान है –

'यथा शिखामयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वत् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्॥' **(वेदाङ्गज्यौ. ४)**

काल के साथ यह शास्त्र संहिता गणित जातक आख्यान तीन भागों में अपने को प्रकट किया है। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कर आचार्य आदि अनेक प्रतिभाशाली विद्वान, विश्व को जानने वाले ज्योतिष आचार्यो ने अद्भुत सिद्धान्तों को लिखकर इस शास्त्र को नये रूप से विभूषित किया है। ये तीन काल की वर्तनी भी स्थिति को यथावत करती है। इससे अतीत और भविष्य काल में स्थित वस्तु को प्रत्यक्ष किया जा सकता है। सत्य है इसकी महिमा के वर्णन में कहा गया है –

'वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम्।
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति॥'

सभी दर्शन, सम्पूर्ण शास्त्र, और सभी उपनिषद् जिनका परम रहस्य भूत वेदों की सौन्दर्य सुधा को निरन्तर पीते हुए भी तृप्त नहीं होते हैं, उन वेदों का अनुशीलन करने का प्रयत्न किया है जैसे साकल्य, आत्रेय, गार्ग्य, स्कन्दस्वामि, माधवभट्ट, नारायण, उद्गीथ, वेङ्कटमाधव, आनन्दतीर्थ,

भट्टस्वामि, गुरुदेव, क्षुर, भट्टभास्करमिश्र, उव्वट, महीधर, भरतस्वामी, गुणविष्णु, सायण आदि ने प्रेम से और भक्ति से हमेशा ही प्रयास किया है, वैसे ही विदेशी विद्वानों ने भी वेद के अमृत को पीने के लिए उनकी व्याख्या करने का अथवा पढ़ने का प्रयत्न किया है।

वेद के छः अङ्गों में ज्योतिष नाम का अङ्ग निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। यज्ञों के प्रतिपादन के लिए ही वेद प्रवृत्त हुए हैं। उन यज्ञों का विधान उचित काल में किया जाता है तो उसका फल प्राप्त करते हैं। ज्योतिष शास्त्र यज्ञ विधान के लिए उचित काल का निर्देश करता है उससे यह शास्त्र तत्कालविधायक शास्त्र इस नाम से और ज्योतिष नाम से भूमि पर सभी जगह प्रख्यात है।

पाठगत प्रश्न 7.8

1. ऋग्वेद का ज्योतिष क्या है?
2. यजुर्वेद का ज्योतिष क्या है?
3. अथर्ववेद का ज्योतिष क्या है?
4. आर्चज्योतिष में क्या कहा है?
5. वेदाङ्ग ज्योतिष शास्त्र के कर्त्ता कौन है?
6. ज्योतिष कितने प्रकार का है?
7. वेद का निर्मल नेत्र क्या है?
8. ज्योतिष शास्त्र का अन्य नाम क्या है?

पाठ का सार

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – ये चार पुरुषार्थ हैं। इन पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए ही मनुष्य हमेशा घूमता रहता है। अङ्ग सहित वेद के अध्ययन से ये प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए अङ्ग सहित वेद ही पढ़ने चाहिए। अन्यथा केवल वेदाध्ययन से सामूहिक ज्ञान पाठक के मन में उत्पन्न नहीं होता है। अतः शिक्षा शास्त्र से वेद मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण पूर्वक – वेदपाठ से वेद की महिमा कीर्तन और वेद की रक्षा सम्भवता हो सकती है। कर्मज्ञान के लिए तथा यज्ञ विधान ज्ञान के लिए कल्प शास्त्र का पाठ करना चाहिए। व्याकरण ज्ञान के विना तो वेद मन्त्र का क्या कहना है। वहाँ वाङ्मय मात्र का ही ज्ञान नहीं हो सकता है। विशेष रूप से कहा की निरुक्त का ज्ञान भी अत्यन्त आवश्यक है। छन्द ज्ञान से वेद का उचित पाठ होता है, पढने वाले के मन में आनन्द उत्पन्न होता है। ज्योतिष शास्त्र यज्ञ विधान के युक्त काल का निर्देश करता है, उससे ज्योतिष शास्त्र की सभी जगह मान्यता है। इन वेदाङ्गों को सही समझ करके वेद पढ़े तो सम्पूर्ण फल को प्राप्त करते हैं।

पाठांत प्रश्न

1. छः अङ्गों में प्रधान रूप से क्या-क्या प्रतिपादन किया है?
2. वेदाङ्गों की व्याख्या कीजिए।
3. इन्द्र ने वृत्रासुर को कैसे मारा था?
4. शिक्षा शास्त्र के कुछ ग्रन्थों का निर्देश कीजिए।
5. भारद्वाज शिक्षा की व्याख्या कीजिए।
6. अपनी इच्छा अनुसार शिक्षा शास्त्र के तीन ग्रन्थ के रचयिताओं का परिचय ऊपर निर्देश के अनुसार व्याख्या कीजिए।
7. कल्प शास्त्र की व्याख्या कीजिए।
8. व्याकरण शास्त्र का विवरण दीजिए।
9. छन्द:शास्त्र की व्याख्या कीजिए।
10. ज्योतिष-शास्त्र की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
11. यास्क के निरुक्त की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

7.1

1. उपकारक।
2. अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिः इति अङ्ग का विग्रह है।
3. कल्पना करते है अथवा समर्थन करते हैं याग प्रयोग का जहाँ।
4. शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, और ज्योतिष।
5. 'ब्राह्मणेन निष्कारणः धर्मः षडङ्गों वेदोंऽध्येयो ज्ञेयश्च' इति

7.2

1. अब शिक्षा की व्याख्या करेंगे - वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान ये शिक्षा अध्याय में बताये गए है।
2. स्वर वर्ण आदि का उच्चारण प्रकार का जहाँ शिक्षा अथवा उपदेश देते है वह शिक्षा है।
3. बाभ्रव्य।

टिप्पणियाँ

4. 'उच्चैरुदात्तः', 'नीचैरनुदात्तः', और 'समाहारः स्वरितः'।
5. आचार्य गालव कृत शिक्षा ग्रन्थ।
6. व्यासशिक्षा, भारद्वाजशिक्षा, पाणिनीयशिक्षा इत्यादि।

7.3

1. संहिता शिक्षा।
2. साठ।
3. लोप, आगम, विकार, प्रकृतिभाव, आख्यानों के चार प्रकार के संधि के नाम हैं।
4. वाजसनेयी संहिता से।
5. तेरह।
6. सन्धि स्वर वर्ण आदि के।
7. एक सौ तीस (१३०)।
8. आस्तिक मुनि के वंशज गोकुलदैवज्ञ का पुत्र केशवदैवज्ञ है।
9. उपमन्यु गोत्र के अग्निहोत्री खगपति महोदय के पुत्र मल्लशर्मा इस नाम का कोई कान्यकुब्ज ब्राह्मण ने।
10. अथर्ववेद से।

7.4

1. श्रौतसूत्र और स्मार्त्तसूत्र।
2. गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र।
3. १.श्रौतसूत्र,२. गृह्यसूत्र, ३. धर्मसूत्र, ४.और शुल्वसूत्र।
4. आश्वलायन, और शाङ्खायन।
5. लाट्यायन श्रौतसूत्र, और द्राह्यायण।

7.5

1. व्याक्रियन्ते व्युत्पाहान्ते शब्दाः अनेन इति व्याकरणम्।
2. दण्डि के द्वारा।
3. मुख से।
4. बैल रूप से।
5. आठ। इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर, और जैनेन्द्र।

7.6

1. पांच।
2. दैवत काण्ड।
3. देवराजयज्वा ने।
4. क्षीरस्वामी अमरकोश के प्रसिद्ध टीकाकार है, और निघण्टु-निर्वचन इस ग्रन्थ के व्याख्याता हैं।
5. १. अग्रायण, २. औपमन्यव, ३. औदुम्बरायण, ४. और्णवाभ, ५. काथक्य, ६. क्रौष्टुकि, ७. गार्ग्य, ८. मालव, ९. तैटिकि, १०. वार्ष्यायणि, ११. शाकपूर्णि, १२. और स्थौलाष्ठिवि।
6. रथीतर शाकपूणि नाम से।
7. बारह।

7.7

1. छन्दयति (पृणाति) इति छन्दों वा छन्दयति (आह्लादयति) इति छन्दः अथवा छन्द्यते अनेनेति छन्दः।
2. जहाँ अक्षरों का परिमाण हो उसे छन्द कहते है।
3. पादों के साथ।
4. चार।
5. पिङ्गल ऋषि ने।

7.8

1. आर्चज्योतिष, षट्त्रिंशत्पद्यात्मक।
2. याजुषज्योतिष, ऊनचत्वारिंशत्पदात्मक।
3. आथर्वणज्योतिष, द्विषष्टि-उत्तरशतपद्यात्मक।
4. वेद ही यज्ञ अर्थ को बताते है .....इत्यादि।
5. लगध ने।
6. सिद्धान्त संहिता होरारूप स्कन्धत्रय आत्मक है।
7. ज्योतिष-शास्त्र।
8. तत्कालविधायक शास्त्र।

॥ सातवां पाठ समाप्त॥